विकास के माध्यम से शिक्षकों का सशक्तीकरण

भवानी रघुनन्दन

यह संयोग ही था कि मैं शिक्षिका बन गई। हुआ यूँ कि मैं अपने बेटे को स्कूल में भर्ती कराने गई थी और वहाँ पता चला कि मुझे स्कूल का समय खत्म होने तक उसका इन्तजार करना पड़ेगा और फिर उसे अपने साथ ही घर लेकर जाना होगा। तब मैंने सोचा कि क्यों न इस समय का सदुपयोग किया जाए और शिक्षा के क्षेत्र में कुछ योगदान दिया जाए। और इस तरह शिक्षा के साथ मेरे 32 वर्षों के साथ की शुरुआत हुई।

और हाँ, मैंने बहुत सोच-समझकर सिर्फ 'स्कूलिंग' शब्द का प्रयोग न करके 'शिक्षा' शब्द का चयन किया है। शिक्षण में प्रवेश करने के बाद मुझे पता लगा कि मैं वास्तव में बच्चों को शिक्षित करने की प्रक्रिया की ओर उसकी सारी बारीकियों के साथ ही आकर्षित हुई थी। मुझे इस बात का एहसास हुआ कि यह कार्य कितना महान और महत्वपूर्ण था। यह मात्र नौकरी नहीं थी, वृत्ति नहीं थी-यह तो प्रतिबद्धता से कहीं बढ़कर थी-वाकई यह एक आह्वान था।

वैसे तो मैं इस बात को लेकर बहुत आश्वस्त थी मुझमें बच्चों को पढ़ाने की क्षमता है-आखिर मेरे पास एक बढ़िया स्नातकोत्तर डिग्री और ऊपर से बी.एड. की डिग्री भी थी-लेकिन जल्द ही मुझे लगने लगा कि क्या वाकई ये डिग्रियाँ पढ़ाने के लिए काफी हैं। मुझे जरा भी अन्दाजा नहीं था कि एक पेशेवर शिक्षक बनने के लिए कितना कुछ चाहिए, उदाहरण के लिए, धैर्य (जो मुझमें कभी था ही नहीं), सहनशक्ति (बहुत कम थी), सम्प्रेषण कौशल (हालाँकि मैं अच्छी अँग्रेजी बोल लेती थी लेकिन उसे और बेहतर करने की जरूरत थी); इस तरह से जरूरतों की सूची अन्तहीन थी। अब मेरी समझ में आ रहा था कि पाठ पढ़ाने के लिए बहुत मेहनत करनी होगी। तो जो बात हल्के से अति आत्मविश्वास के शुरू हुई थी वह अब धीरे-धीरे घबराहट में बदल रही थी कि मैं विद्यार्थियों का सामना कैसे करूँगी और अन्त में मैं निराश सी होने लगी।

अब मैं यह समझ गई थी कि मुझे अपने शिक्षण कौशल को पैना करने की जरूरत है!

फिर मैंने पढ़ना शुरू कर दिया। ध्यान देने वाली बात यह है कि यह इंटरनेट, गूगल और शिक्षक प्रशिक्षण से पहले का जमाना था। पढ़ने का मतलब था उन लेखों को पढ़ना जो उपलब्ध थे, तो मैं उन्हें पढ़ती गई, वैसे इस प्रकार के लेख भी बहुत कम ही थे। उन दिनों लोग अधिक आलोचना नहीं करते थे। शिक्षकगण मंच पर आसीन ज्ञानी माने जाते थे। वे सब कुछ 'जानते' थे। वे बोलते थे और बच्चे उसका अनुसरण करते थे। लेकिन क्या वे सही बातें कह रहे थे? वे भी यही मानते थे कि हर बच्चे को पढ़ाने का एक ही तरीका है।

इस दौरान समाज बदल रहा था। माता-पिता अधिक शिक्षित और विशिष्टता प्राप्त थे, अतः शिक्षकों से उनकी अपेक्षाएँ बढ़ रही थीं। वे जानते थे कि उन्हें क्या चाहिए। वे महत्वाकांक्षी थे और इस बात को सीख रहे थे कि उन्हें अपने बच्चों को क्या देना चाहिए, ज्यादा कमाई, पढ़ने और यात्राओं के द्वारा बहुत सारी जानकारियाँ उजागर हो रही थीं। पीढ़ी एक्स (Gen X) आ चुकी थी-यानी 60 के दशक में पैदा हुए लोगों के बच्चे। माता-पिता दोनों काम पर जाने लगे थे और बहुत से बच्चे 'लैचकी (latchkey)' बच्चे बन गए थे अर्थात माता-पिता के काम पर जाने के कारण वे घर पर अकेले होते थे, स्वतंत्र थे और भौतिक सुख-साधन सम्पन्न थे। उनमें धैर्य की कमी थी, बड़े अध्याय पढ़ने का समय उनके पास नहीं था, सारी जानकारी महत्वपूर्ण बिन्दुओं (bullet point) के रूप में चाहते थे और उन्होंने जो चाहा वही उन्हें मिला-अपने कम्प्यूटर पर एक क्लिक से सारी जानकारी मिल जाती थी, कट-पेस्ट की संस्कृति के साथ अहंकार भी विकसित हुआ।

इस पूरे परिदृश्य में मंच पर आसीन ज्ञानी कहाँ था? वह तो समय के साथ नहीं बदला। जिस समाज में बच्चों को यह सिखाया जाता था कि शिक्षक जो कुछ कहे उसे मान लेना चाहिए, उस समाज के बच्चों को पढ़ाने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए उनके शिक्षकों ने जिन तरीकों का इस्तेमाल किया था, वे प्रयोग में लाए जा चुके थे और परीक्षित थे। उन दिनों प्रश्न पूछने को या तो अहंकार के रूप में लिया जाता था या यह माना जाता था कि शिक्षक के ज्ञान पर सन्देह किया जा रहा है।

इस रवैये को बदलने का समय आ चुका था। अब शिक्षक विद्यार्थियों को 'दोष' नहीं दे सकते थे या यह नहीं कह सकते थे कि, 'ओह, हमारे जमाने में...'। क्योंकि ऐसा करने पर तीन उँगलियाँ वापस उनकी ओर इशारा करतीं। अब उन्हें अलग तरह के माता-पिता और विद्यार्थियों का सामना करना था और वे इसके लिए प्रशिक्षित नहीं थे, इस तथ्य के बावजूद कि वे खुद ही बदल गए थे!

जब मैंने एक प्रसिद्ध स्कूल की प्रधानाध्यापिका के रूप में कार्यभार सम्भाला तब मैं वे सारी बातें लागू कर पाई जो मेरी दृष्टि में सही थीं। दूसरे शब्दों में शिक्षकों को नए सिरे से सब कुछ सीखने की जरूरत थी।

तो इसके लिए सबसे पहले मैंने खुद को प्रशिक्षित किया। मुझे हमेशा से यही लगता है कि अपने वेतन का कम से कम 10 प्रतिशत हिस्सा अपने स्वयं के सुधार के लिए खर्च करना चाहिए जैसे किताबें खरीदना, कोर्स में दाखिला लेना इत्यादि। इसलिए मैं हर साल अपने खुद के पैसों से किसी एक कोर्स में भाग लेने लगी। वापस आकर मैं यदा-कदा अपनी सीखी हुई बातों और पढ़ी हुई सामग्री की स्लाइड बनाती और स्टाफ की बैठकों में उन्हें प्रस्तुत करती। मैंने 10 प्रतिशत सफलता की अपेक्षा की और मैं जानती थी कि इससे 20 प्रतिशत लोग प्रभावित होंगे।

विद्यालय में शिक्षकों के लिए मैंने पहला प्रशिक्षण आयोजित किया। इसका उद्देश्य उन्हें इस बात का एहसास दिलाना था कि उन्हें तकनीकी से डरने की जरूरत नहीं, वही डर जो विभिन्न प्रकार से सामने आता था, जैसे प्रतिरोध ('ओह, हमें इसकी क्या जरूरत है-इतने साल हमने बिना इसके भी काम चलाया ही है'), से अनिच्छा ('यह कठिन है, जटिल है' और 'हम इस उम्र में यह सब कैसे सीख सकते हैं') तक। इसके अलावा एक दृढ़ धारणा यह भी थी कि कम्प्यूटर का सम्बन्ध तो कम्प्यूटर विज्ञान विभाग से है। इस धारणा को बदलने के लिए मैंने कहा कि कम्प्यूटर स्कूल के हैं और हालाँकि कम्प्यूटर विज्ञान के विद्यार्थियों को इसका प्रयोग करने के लिए प्राथमिकता दी जाएगी लेकिन कोई भी शिक्षक अपने खाली समय में इसका प्रयोग कर सकता है। इसके बाद एक नोटिस जारी किया गया कि निम्नलिखित शिक्षक अपने प्रश्नपत्र एक फ्लॉपी के रूप में जमा करेंगे जो प्रिंट के लिए तैयार हो। पहले मैंने अँग्रेजी जैसे विषय चुने जिनमें विशेष अक्षर या चित्रों की आवश्यकता नहीं पड़ती। नोटिस में यह भी कहा गया कि कम्प्यूटर विज्ञान के शिक्षक दूसरे शिक्षकों को स्कूल के बाद कम्प्यूटर सिखाएँगे। इस बात पर तो हड़कम्प मच गया। 'हम नहीं सीख सकते, हम टाइप नहीं कर सकते, नहीं कर सकते... नहीं कर सकते...!' मैंने अपने कान बन्द कर लिए और कहा,'अगर मैं यह काम कर सकती हूँ तो आप भी जरूर कर सकते हैं।' शुरू में सन्देह और डर की भावना जरूर थी लेकिन फिर यह सम्भव हो गया...शायद मेरी लोकप्रियता की कीमत पर। अस्तु, जब प्रश्नपत्र छपे तो वे सभी बहुत उत्साहित नजर आए। ये प्रश्नपत्र हस्तलिखित प्रश्नपत्रों से अधिक स्पष्ट व साफ थे और इनमें कागजों का उपयोग भी कम हुआ। मैं उनमें गर्व की भावना भी देख पाई क्योंकि वे अपने को सशक्त महसूस कर रहे थे और उनमें स्वामित्व की भावना भी उत्पन्न हुई। उन्होंने एक नई चीज सीखी थी और वे कुछ ऐसा कर रहे थे जो दूसरे कई लोग नहीं कर सकते थे तथा मैं बिलकुल इसी बात की उम्मीद कर रही थी। अगले सत्र में जब और शिक्षकों ने रुचि दिखाई तो मैंने उनकी बहुत सराहना की। फिर और लोग शामिल हुए। मैं बस चुपचाप बैठकर देखती रही। भाषा-शिक्षकों को पीछे नहीं छोड़ा जा सकता था। उन्हें विभिन्न लिपियों के लिए सॉफ्टवेयर चाहिए थे। फिर और अधिक कम्प्यूटरों की माँग हुई।

फिर हम धीरे-धीरे दृश्य-श्रव्य सामग्री की ओर बढ़े। इसके लिए एक कमरा तैयार किया गया जिसमें प्रोजेक्टर और पर्दा लगा हुआ हो। पहले तो इस कमरे का उपयोग करने में जरा आनाकानी हुई क्योंकि यह काफी दूर स्थित था। इसलिए मैंने उसी कमरे में स्टाफ मीटिंग करनी शुरू की, ताकि दूरी की भावना कम हो। फिर उस कमरे का उपयोग बड़ी कक्षाओं के लिए किया जाने लगा। आज हालत यह है कि इस कमरे की अग्रिम बुकिंग करवानी पड़ती है और इसके प्रयोग के लिए लड़ाई-भिड़ाई होती है!

अब मुझे लगने लगा कि सभी कक्षाओं में स्मार्ट बोर्ड और प्रोजेक्टर लगाने की जरूरत है। इसके लिए बहुत सारी धन-राशि चाहिए थी जिसे फीस के द्वारा जुटाया गया। आज स्कूल में एल.के.जी. से लगाकर आठवीं तक की सभी कक्षाओं में बोर्ड लग चुके हैं। मुझे SMART के वरिष्ठ अधिकारियों के सामने एक प्रस्तुति के लिए भी आमंत्रित किया गया कि नोटबुक सॉफ्टवेयर (जैसा कि उसका नाम है) को हमारी अध्यापन कला में कैसे प्रयोग में लाया गया।

महत्वपूर्ण बात यह थी कि शिक्षकों को अपनी क्षमता का एहसास हो गया था और उन्हें गर्व था कि वे अपने शहर में पथ प्रदर्शक बन गए हैं। मेरी पहली परिकल्पना सच हुई और रणनीति सफल रही। शिक्षकों और विद्यार्थियों को काम में जुटा हुआ देखकर मैं रोमांचित थी। स्कूल के भविष्य के लिए यह बहुत बड़ी बात थी।

अब मैंने शिक्षकों के व्यक्तिगत विकास के लिए प्रयत्न शुरू किए। 1998 में मैंने नई दिल्ली में सेण्टर फॉर एजुकेशनल मैनेजमेंट एण्ड डेवलपमेंट (CEMD) द्वारा आयोजित एक प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लिया था। वहाँ के स्रोत व्यक्ति बेहद सक्षम और प्रतिबद्ध थे तथा कोर्स का डिजाइन व विषयवस्तु भी बहुत बढ़िया थी। इस कार्यक्रम के तीन मॉड्यूल थे - व्यक्तिगत विकास पर ध्यान, शिक्षण सम्बन्धी डिजाइन और संस्थागत प्रबन्धन। इस तरह के कोर्स के बारे में पहले कभी नहीं सुना गया था। जब स्रोत व्यक्तियों को विश्वास हो गया कि यह कोर्स चेन्नई में किया जा सकता है तो हमारे स्कूल ने इसकी मेजबानी की और इसमें 35 प्रतिभागी थे। मैं भी इस कार्यक्रम में एक स्रोत व्यक्ति थी और मैंने उनके लिए कुछ सत्र संचालित किए। अब इस धारणा व सोच पर सवाल उठाए जा रहे थे कि किसी को प्रधानाध्यापक इसलिए बनाया जाता है क्योंकि वह एक मुकाम पर 'पहुँच' चुका है या दूसरे शिक्षकों के अधिक जानता है। मैंने सोचा कि सीखना तो सिर्फ शुरू होता है। प्रधानाध्यापक बनने के लिए आवश्यक कौशलों और शिक्षक बनने के लिए आवश्यक कौशलों में बहुत अन्तर है। कई स्कूल एक अच्छे शिक्षक को लेकर उसे बुरा प्रधानाध्यापक बनाने की

गलती करते हैं। दूसरे, प्रधानाध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए कोई संस्था नहीं थी। प्रधानाध्यापकों को भी लगता था कि उन्हें किसी प्रशिक्षण या सीखने की जरूरत नहीं है और वे प्रशिक्षण के लिए शिक्षकों को भेजते रहते। आज प्रधानाध्यापकों को अपने स्थान पर खड़े रहने के लिए भागा-दौड़ी करनी पड़ती है। मुझे लगा कि यह नहीं चलेगा। मैंने एक साल के कार्यक्रम के लिए अपने दो वरिष्ठ शिक्षकों को भेजा; मेरे दो शिक्षक और यह समझ गए कि मैं क्या करने की कोशिश कर रही थी। फिर इस कार्यक्रम के लिए प्रायोजक के रूप में एक संस्था मिली और अब मुझे इस बात का गर्व है कि वरिष्ठ शिक्षकों का नौवां बैच इस कार्यक्रम में भाग ले रहा है।

मेरी एक और परिकल्पना भी सफल रही। प्रधानाध्यापक का कार्य मार्गदर्शन करना और शिक्षकों को यह महसूस कराना है कि उन्होंने खुद ही वह काम किया है! इसी बीच सी.बी.एस.सी. के तत्कालीन शैक्षिक निदेशक ने मुझे सी.बी.एस.सी. के साथ प्रधानाध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए संसाधिका बनाया। उनके साथ मैंने त्रिचूर, कालीकट, हैदराबाद आदि में प्रधानाध्यापकों को प्रशिक्षित किया और इन क्षेत्रों में प्रधानाध्यापकों के सामने आने वाली चुनौतियों के बारे में बहुत कुछ सीखा।

इसी दौरान मुझे माइक्रोसॉफ्ट ने नई दिल्ली में आयोजित शिक्षा शिखर सम्मेलन (जो शिक्षण में तकनीकी के समावेशन से सम्बन्धित था) में कुछ पैनलों का सदस्य बनने के लिए आमंत्रित किया। इस सम्मेलन ने संसार के विकसित देशों में तकनीकी के उपयोग के बारे में मेरे ज्ञान को बढ़ाया। मेरी आशाओं और विचारों को एक अलग आयाम मिला और मैं अपने मन में ढेर सारी आशाएँ लेकर लौटी।

मैंने अपने स्टाफ को जो स्लाइडें दिखाई थीं उनमें से एक पीढ़ी एक्स पर थी जिन्हें वे अब पढ़ा रहे हैं, निरन्तर सीखने की जरूरत, शिक्षण के लिए जुनून और नए शिक्षकों को प्रेरित करना आवश्यक है। सन्देश यह है कि 'आपको विषय पढ़ाने की जरूरत नहीं है; आपको विषय के प्रति अपने जुनून को व्यक्त करना है और तब विद्यार्थी खुद-ब-खुद सीखने लगेंगे। सम्प्रेषण, भावनात्मक बुद्धि, अलग-अलग विद्यार्थियों के लिए विविध प्रकार का शिक्षण, टीम में कार्य करना, पाठ का डिजाइन, प्रश्नों के प्रकार, प्रश्नपत्र बनाना, रचनात्मक और योगात्मक आकलन और ऐसे ही कई अन्य कौशलों पर प्रशिक्षण सत्र हुए हैं जो शिक्षण में बने रहने के लिए आवश्यक हैं।

लगभग एक दशक के बाद मुझे लगा कि हम शिक्षकों के लिए एक प्रशिक्षण केन्द्र खोलने के लिए तैयार हैं। साल भर में मैंने शिक्षकों के लिए परिष्करण स्कूल की तर्ज पर एक ऐसा कार्यक्रम डिजाइन किया जो दो सप्ताह के लिए था। 20 नए शिक्षकों ने इस कार्यक्रम में भाग लिया और हमारे स्कूल में हमारे साथ काम किया। दुर्भाग्य से इस कार्य को बन्द करना पड़ा क्योंकि स्कूल ने उपनगरों में स्कूल की नई शाखा खोलने का निर्णय लिया जिस पर समय और ध्यान देना जरूरी था। जहाँ हमने कार्य को रोका था वहीं से यह शाखा शुरू हुई और बहुत आगे तक गई। शिक्षक अब अधिक अनुभवी हो गए थे और प्रधानाध्यापिका खुद तकनीकी के प्रयोग में प्रशिक्षित थीं और उसे अच्छी तरह समझती भी थीं। यह स्कूल लगभग कागज रहित स्कूल था क्योंकि सारे शिक्षक इंट्रानेट पर थे और सारे माता-पिता मोबाइल एप्लिकेशन या वाट्सएप समूहों पर।

प्रधानाध्यापिका के रूप में 17 वर्ष तक कार्य करने के बाद मैं सेवानिवृत्त हुई। मैं सन्तुष्ट थी कि मैं शिक्षक विकास में थोड़ा-बहुत योगदान दे पाई। आज भी मुझे विभिन्न स्कूलों में कार्यशालाओं का संचालन करने के लिए बुलाया जाता है। शायद यही मेरे मन की पुकार है, क्योंकि इसी की वजह से मैं सीखना और पढ़ना जारी रख पाती हूँ और मैं बहुत खुश हूँ।

शिक्षक विकास की प्रक्रिया ने वाकई एक लम्बा सफर तय किया है।

भवानी रघुनन्दन, विद्या मन्दिर सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, चेन्नई की पूर्व प्रधानाध्यापिका हैं। प्रधानाध्यापिका के रूप में 17 वर्ष तक कार्य करने के बाद वे सेवानिवृत्त हुई। वे कई शैक्षिक संस्थानों के बोर्ड की सदस्या होने के साथ-साथ एक स्रोत व्यक्ति और सलाहकार भी हैं। उनसे bhavarag@gmail.com या bhavani1954@hotmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल